चित्र

मूल मराठी कथा -- परशुराम देशपांडे
हिन्दी अनुवाद -- लीना मेहेंदले

मैं नवी मुंबई में आकर रहने लगा तबसे पांच वर्ष बीते। यहॉं शहरीकरण की अच्छी प्लनिंग है। चौडी सुंदर सडकें, करीने से बनी बहुमंजिली इमारतें और जनसंख्या वृध्दि। फिर भी दिनके ग्यारह बजते बजते सडके शांत हो जाती हैं। मानों सारी भीड को ऑफिसों ने सोख लिया हो।

अलस्सुबह जब किसी बडी आवाज से जागकर घबराए पंछी पंख फडफडाते हुए उड जाते हैं और शोर करने लगते हैं तो उन्हें डरा हुआ जानकर पेडोंकी नटखट कोंपलें आपस में खुसफुस कर हँसती रहती हैं। तभी से रास्ता तैयार हो जाता है अलग अलग आवाजोंके धमाके झेलने के लिये। लेकिन इस मध्याह्न की बेलामें वह भी अखबार पढते हुए रिटायर्ड बूढे की तरह सुस्त हो जाता है।

इस बेला तक मैं भी अपने सुबह के कामों से निवृत्त हो जाता हू। अब रास्ते पर ट्रॅफिक का शोर नही होगा और मेरे पास भी कोई नही आनेवाला है। फिर मै इझल के पास सरक जाता हू। वहॉं चित्रकारी के लिये पेंटिंग ब्रश, रंगों की टयूब्स, आदि सामान

सजाकर कॅनवास से कव्हर हटा देता हू। बीच बीच में नसों में तनाव और सिरदर्द होने वाला है, जानता हूँ। लेकिन निरूपाय हूँ।

यह चित्र मैं कबसे बना रहा हूँ। कॅनवास पर रंग उभरते चलते है। अभी मेरी कोई थीम पक्की नही हुई है। न ही मुझे चित्र को पूरा करने की कोई जल्दी पडी है।

अमिता कई बार मुझसे कह चुकी है, -- तुम जान बूझकर कहते हो कि चित्र को पूरा करने की कोई जल्दी नही है। इससे तुम्हारे चित्रों की कीमत बढती है। जैसे कोई व्यापारी जान बूझकर अपने माल का शॉर्टेज निर्माण करता है तब खरीददार भी उतावली पर आ जाता है। फिर जैसे ही तुम्हारे चित्रों की प्रदर्शनी लगती है, पहले ही दिन कई सारे चित्र भारी कीमत पर बिक जाते हैं।

मुझे बनाने की सोचो भी मत तुम। मैं तुम्हे अच्छी तरह पहचानती हूँ। तुम्हारी चित्रकला की शैली भी मेरी पहचानी हो चुकी है। कॅनवास पर ब्रश से पहली रेखा उभरती है, तभी मैं समझ जाती हूँ कि क्या चित्र बनने वाला है।

अमिता की आदत है। एक साँस में ही इतना कुछ बोल जाती है। लेकिन जैसे तेज दौडती हुई रेलगाडी को कोई सिग्नल तटस्थ भावसे देखे ऐसा मेरा निराकार चेहरा देखकर उसके शब्द भी बिखर जाते हैं। फिर एक झटके से वह माथे पर आई लट को पीछे ठेलती है और जाकर मेरे पीछे रखे सोफे पर अलसाई बिल्ली की तरह

बैठकर कुछ पढने लगती है। मैं भी बिना उसकी औऱ देखे अपने चित्र पर ध्यान देता हूँ। लेकिन उसके शरीर की चुलबुलाहट से ही मैं जान सकता हूँ कि वह क्या पढ रही हैं। तीन चार फीट दूरी पर ही तो है मुझसे। इतना मैं उसे अंतर्बाह्य जानने लगा हूँ की कमरे की शांती मे उसके शरीर की हर गतिविधी मुझे घडी की टिकटिक की तरह सुनाई दे जाती है।

मेरे पास बहुत किताबें भी नही हैं। कुछ उपन्यास कुछ कविता संग्रह, कुछ चित्रकारो की चित्रात्मक पुस्तके। हाँ पूरा का पूरा शेक्सपियर साहित्य है मेरे पास। बार बार पढा है मैने। और अमिता ने भी। जितना वह मेरे अंदर की गहराई में धँसा है उतना ही उसके भी। तभी तो उसके उच्छवासोंसे मै

जान लेता हूँ कि कब वह चंद्रमाधवी के प्रदेश में विचरण कर रही है और कब बादलों में उडान भर रही है। अमिता की नजर भी मुझे आर पार देखते हुए बता सकती है कि मैं अपने पॅलेट पर अगला रंग ऑलिव्ह ग्रीन लेने वाला हूँ या व्हिरिडियन ग्रीन। कई बार वह नाराज हो जाती है -- मैं क्यों यहाँ आती हूँ। क्यों तुम्हारे पीछे घंटो गुजारती हूँ?

ऐसे सवाल पर मैं आश्चर्य से उसे देखता हूँ। तुम्हारे ही कारण तो मैं ये चित्र बना पाता हूँ। तुम नही आई तो इस कॅनवास पर एक भी रेखा नही उभरेगी। फिर वह अपनी चपटी नाक को थोडा ऊँचा उठाकर कहती है -- बस बस अब कविता मत सुनाने लगना।

लेकिन फिर भी हम दोनों के बीच आज भी कई प्रश्न बाकी पडे हैं। मैं कौन हूँ और अमिता कौन है? कहाँ से आई है? क्या नाता है हमारा? क्यों वह मुझ पर इतना समय देती है? मेरे सारे चित्रोकी रेषाएँ उसे याद हैं। फिर भी बार बार उन्हें क्यों देखना चाहती है? उसके आने की आहट मात्र से मेरे शरीर में थिरकन सी क्यों होती हैं? स्पर्श के बिना ही कैसे हमे एक दूसरे के शरीर के तापमान का अंदाजा हो जाता है? ढेर सारे प्रश्न। लेकिन दोनों ने मानों गुप्तवार्ता की है कि इनके उत्तर नही ढूँढेंगे।

पर इस चित्र का क्या? यह तो अधूरा है। अमिता, जो बडे अभिमान से कहती थी कि मैं तो तुम्हारे ब्रश की पहली ही लाइन से चित्र का भविष्य बता सकती हूँ, वह भी आज मेरी ही तरह असमंजस में हैं। परसों मैने बडा व्याकुल होकर उससे कहा -- तुम ही कहो अब मैं कौन सा रंग उठाने वाला हूँ। वह भी हैरान थी-- मैं नही पकड पा रही आशुतोष । अभी तुम्हारे मन के अंदर इतने रंगों की धाराएँ बह रही हैं, इतना बडा झंझावात आया हुआ है कि मैं भी नही समझ पा रही।

बडी देर तक मौन हमारे बीच में जम सा गया। फिर बोली -- मुझे लगता हैं कुछ दिन मुझे यहाँ नही आना चाहिये। मैं इतनी रिती हो गई हूँ कि अब मैं तुम्हारे चित्रों को रंग और आकार नही दे पा रही। अब तुम्हें ही फिर से अपने चित्रों की खोज करनी पडेगी। मैं और भी अकुला गया -- मैं भी तो एक उजाड रेगिस्तान

हो गया हूँ अमिता। लेकिन उसने मेरी ओर नही देखा। खिडकी से बाहर लटक रहे काले बादल को देखती हुई बोली -- नही, आगे से अपनी खोज खुद ही करो। कहते थे ना कि कभी न कभी अपना ओओॅसिस मैं खुद बनाऊँगा।

लेकिन इस हालत मे? जब यह चित्र भी अधूरा है। जाने किस मुहूर्त पर यह चित्र धूमकेतू की तरह मन में आया और मूलाधार से मोर की तरह पंख फैला कर उठा। अब मस्तक पर धक्के दे रहा है। ऐसे में तुम दूर रहने की बात करती हो। अमिता कुछ नही बोली। पहले कई बार मेरी ऐसी ही आरजूओं पर वह रुक जाया करती। कहती, कोई जादू टोना कर देते हो तुम। लेकिन उस दिन चली गई और अब कई दिनोंसे वाकई इधर नही आई है। उसके सिवा कोई इधर नही आता। ठीक है, अब यह ब्रश ही मेरे से रंग भरवा लेगा। दूसरा उपाय भी क्या है मेरे पास? लेकिनं इस कमरे में पहले से बिखरी हुई कई आवाजें मुझ पर अंगुली उठाकर कहती हैं कि मैं ही जिम्मेदार हूँ अमिताको यूँ जाने देने के लिये। वे मुझे रातभर सोने नही देतीं। उन्हें कैसे समआऊँ कि आमिताने कभी वापस न आने की बात नही कही है। वह आनेवाली है वापस। और इसीलिये इस कॅनवाल पर मैं रंग फैलाता रहता हूँ। परत दर परत। और आज लगता है कि कुछ धूमिल सी आकृति लिये हुए एक चित्र बन रहा है। इन आकृतियोंकी गहराईमें मै झाँक कर देखता हूँ तो कॅनवास से निकलती हुई ओरछा के उसांसों की गर्मी मुझे छू जाती है। गहरे लाल नीले रंगों में बेतवा का पानी लहराने लगा है। उस पानी में कई महिने पहले हमारे प्रतिबिम्ब जम गये थे। अब

उनमे से कुछ पिघल कर थरथराने लगे हैं। उनमें से काली चट्टानें सर उठाकर झाँकने लगी हैं।

॥॥॥।

ओरछा.... हाँ, यह ओरछा ही है। मध्य प्रदेश के पुराने इतिहास को साँसो मे समाकर भी पतझड के रंगहीन पत्तों की तरह बुझा बुझा सा ओरछा...

कृष्णन नायर -----मेरे आर्थिक मामले संभालने वाला मेरा सीए और अमिता ----उसकी नई प्राइवेट सेक्रेटरी । शुरू में मानने को तैयार ही नही कि कोई चित्रकार केवल चित्र बेचकर इतने पैसे कमा लेता है उसकी मोटी मोटी आँखों में बच्चोंसा कौतुहल देखकर मैं खुद उसे अपने चित्र दिखाने ले आया था।

वहीं से शुरू हुआ हमारी प्रेमकहानी का प्रवास। लेकिन जीवन का यशोदायी कालखंड शुरू होने से पहले जो बीती थी उसे मैने मनके दूरदराज के कोने में बंद कर दिया था। उसे मैंने नही खोला। अमिता ने भी अपने पूर्व स्मृतियों को कही फेंक दिया था। जब मुझे ही उसके विषय में कुछ नही मालूम तो औरोको कैसे हो। फिर भी एक दूसरे का चैतन्य इतना गहरा था कि हमें बीती बातों को जानने की कोई ललक नही थी।

स्त्री सौंदर्य के परिणाम मेरे जैसे चित्रकार की पलकोंने भी रटे होते हैं। अमिता उस दृष्टिसे कोई रूपवती नही थी। वह नाटी

थी। और शरीर की धनता भी कम ही थी। लेकिन चेहरा बडा ही नपा तुला था। उसकी आँखे, उसके होंठ, उसकी जरा सी चपटी नाक और घने केश। उसे पहली बार देखा तो उसका चेहरा ऐसा दिखा था मानों शबनम में नहाया ताजा खिला फूल हो। मुझे वह चिरपरिचित सा लगा। उसकी आँखों में रात्रो के आकाश की नीलिमा थी। चंद्रमा की कोर की तरह उसके पतले होंठ और करीब ही रोहिणी की तरह सोंदर्य बिखेरता हुआ तिल। वह हँसी तो मानो भोर की लालिमा फूट पडी थी।

उसे देखकर मैं चकरा गया था। आश्चर्य, कौतुहल, एक अनामिक चिंता के साथ साथ एक अजीबसा नशा भी छा गया था मुझपर। उसने मेरे सदा संकोची स्वभाव पर काबू कर लिया। मेरे मन में प्रेम का प्रचंड यज्ञकुंड दहदहाने लगा और सारी भाव भावनाएँ उसमें आहुति की तरह स्वाहा होने लगीं। अचानक मैं हर्ष खेद से परे हो गया और बाकी रहा केवल प्रेम।

मेरे मन पर पैंतीस साल की जमी परतें अमिता की हँसी में पिघल रही थीं। उसने मुझे भी अपने जैसा ओस नहाया नया नवेला बना दिया था। और मेरी संवेदनाओं पर भी कब्जा कर लिया था। प्रेम की अद्भुत शक्ति से मेरा पहिला परिचय था। प्रेम का नशा कैसे चढता है और तनी गरदन वाले भी कैसे प्रेम के सामने घुटने टेक देते हैं। प्रेमगीत कैसे खुद ब खुद होठों पें आ जाते हैं। ये सारे अनुभव मैं पहली बार कर रहा था। अब तक मैं कितनी बार बहस कर चुका था कि प्रेम एक घिसा पिटा शब्द है। लेकिन आज वही

एक शक्तीमंत्र लग रहा था जो मेरे मन के अंदर भरे पडे हलाहल से अमृतकुंभ को उठाकर बाहर ला रहा था।

मैंने नायर से यह सब बताया तो वह हॅसता ही रहा। आशुतोष, मैं तो तुझे एक आदर्श चित्रकार समझता रहा, सामने बैठी सर्वांग सुंदर न्यूड मॉडलका चित्र भी तुम जिस तटस्थ भावसे बनाते हो उसे देखकर तो यही लगता था कि तुम्हारे सपनों की दुनियाँ की किसी अप्सरा की संगत छोडकर इस क्षुद्र धरा की मानवी स्त्री का स्वीकार ही तुम नही करोगे। फिर हमारी आमिता में तुम इतना कैसे उलझ गये?

'पता नही', उसके टेबुल पर पडा शीशे का पेपरवेट मैं घुमाता रहा। उसके अंदर रची नक्काशी को दिखाकर कहा -- 'लगता है इसी नक्काशी की तरह अमिता की छाप पहलेसे ही मेरे दिल की गहराई में कहीं थी। जब दो परिचित समय के अंतराल से एक दूसरे से मिलते हैं तो जुदाई का काल सिमट कर लुप्त हो जाता है। कुछ ऐसा ही हुआ है हम दोनों के बीच। मानों हम सदियोंसे एक दूसरे के जानते हैं और बीच मे वह अनचिन्हा अंतराल कभी था ही नही।' नायर ने बडी नाटकीयता से हाथ जोड दिये -- 'यहॉ तक तो ठीक है, लेकिन अब तुम्हारी भाषा समझने के लिये भी मुझे भोलानाथ के चरण पकडने पडें ऐसा तो मत करो।'

नायर सही कह रहा था। उसे चित्रोंकी समझ जरा भी नही है। हमारा एक दूसरा दोस्त है भोलानाथ सहाय, कानपुर से है। वही समझाता है नायर को। खुद हिंदी का प्राध्यापक है, उसके चाचा

आकाशवाणी में बडे अफसर हैं। उन्हीं की पहचान पर भोलानाथ को प्राध्यापकी भी मिली और आकाशवाणी पर अपनी धीरगंभीर गंगौघ जैसी वाणीमें हिंदी समाचार पढने का काम भी। दो वर्ष पहले निराला की कविता पर आधारित मेरे चित्रों की प्रदर्शनी जहाँगीर आर्ट गैलरी में लगी थी। वहाँ हमारी पहली मुलाकात हुई थी। भोलानाथ भी वाशी में ही रहता हैं यह जानकर हम दोनों खिलखिला उठे थे। भोलानाथ ने अपनी उसी लोकप्रिय आवाज में कहा -- 'दुनियॉ छोटी है यह तो पता था, लेकिन इतनी छोटी होगी यह न मालूम था।'

हम दोनों जल्दी ही अच्छे दोस्त बन गये थे। सांसारिक बंधनसे हम दोनों ही दूर रहना चाहते थे। इसलिये अकेले ही रह रहे थे। भोलानाथ वन बेडरूम फ्लॅट में रहता था और मैं इस विशाल टेरेस फ्लॅट में। बस यही अंतर था। लेकिन एक बडी समानता थी -- हम दोनो के फ्लॅट में बेतरतीबी से पडा हुआ सामान। मेरे कमरे में यहाँ वहाँ कॅनवास, लकडी के फ्रेम, रंगोंकी टयूब्स, ब्रश, मुडे तुडे फर्श पर फेंके हुए कागज। भोलानाथ के कमरे में हर तरफ किताबें बिखरी हुईं। मेरे कमरे में करीने से एक ही वस्तु रखी थी। पैरिस से शौक से लाई हुई फोर ट्रॅक म्युझिक सिस्टिम। उन कॅसेट्स की रिकार्डिंग में क्या क्या नही है। बंगाली बालाओं के लोकगीत, विविध भारती के भूलेबिसरे गीत, कई पंडितों के बंगलमें कई खान साहबों के गाये शास्त्रीय राग, रवीन्द्र संगीत, भोलानाथ के स्वर में कई कविताएँ, शेक्सपियर के नाटकों के अंश......।

अमिता मेरे जीवन में आई तो उसने शुरू में कोशिश की मेरा घर सँवारने की। लेकिन उसे जल्दी ही समझ आ गई कि फ्लॅट तरतीबी से रहे इससे जरूरी है कि जब भी मै हाथ बढाऊँ तो हर चीज मुझे अपने आस पास ही मिल जाय। फिर उसने अपनी जिद किचन तक रखने का फैसला किया। लेकिन वहाँ भी भोलानाथ की दखल थी। पहले पहले अमिता चिढी, लेकिन जब उसने देखा कि मुझे सामिष पदार्थ पसंद हैं और भोलानाथ उन्हें बनाने में माहिर है तो उसका विरोध कर्पूर की तरह उड गया।

मेरे घर में रोज आने वाले अमिता और भोलानाथ, किचन से निकलने वाली खुशबुएँ, संगीत के स्वर और इन सब के बीच गाहे बगाहे हाजिरी लगाने वाले नायर, प्रभुदास, देवराज आदि मित्र परिवार देखकर पहले तो इस ब्लॉक के बाकी घरों के लोग भौंहें ऊँची करते थे। लेकिन अमिता ने अपनी स्त्री सुलभ चातुर्य से हमारी पडोसन की पटा लिया था। मैंने जब सुना कि अमिता और नायर भाई बहन हैं और इस बंगाली बाबूसे अमिता की सगाई हो चुकी है तो मैं चकरा गया था। मैंने अमिता से पूछा उसने पडोसियों को यह झूठ क्यों कहा तो उसका जबाब सीधा था। 'अपना समाज हर संबंध के लिये, हर रिश्ते के लिये एक नाम चाहता है। मुझे भी यहाँ रोज चोरों की तरह मुँह छुपा कर आना असहनीय हो
जाता है। अगर मैं यह झूठ नही कहूँ तो ये औरतें और भी भयंकर अफवाह फैलाऐंगी। तुम तो फक्कड ठहरे, तुम्हें कोई फर्क नही

पडता। लेकिन मेरे जैसी अकेली युवती के लिये उनकी निगाहें सहना अग्निपरीक्षा से कम नही होता।'

'ये सब ठीक है। लेकिन तुमने क्यों सोच लिया कि हम शादी करने वाले हैं।' 'वह तो अटल है। आज या कल कभी न कभी तुम मुझसे शादी करोगे यह मुझे मालूम है।' 'क्या खाक मालूम है तुम्हें। और मुझे तुम्हारे नाम अमिता कदम के अलावा क्या मालूम तुम्हारे बारे में।' 'मुझे भी तुम्हारा नाम आशुतोष मुखर्जी है इसके अलावा कुछ नही मालूम। लेकिन यदि हमारे नाम कुछ दूसरे होते तो क्या फर्क पड जाता? हमारी मुलाकात इसी तरह होगी यह तो तय था।' 'लेकिन मान लो मैं दुसरी लडकी से शादी कर लूँ तो?' 'लेकिन वेकिन क्या। तुम्हें पक्का पता है कि तुम ऐसा कुछ नही करनेवाले।' और एक झटके से अमिता निकल गई। उसके अभिमान क्यों ठेस पहुँची थी। वह चली गई और मुझे उदासी ने घेर लिया। वह सच ही तो कह रही थी। मैं इतने वर्ष रुका था तो सिर्फ उसी के इन्तजार में। उस एक पल में झक् उजाले की तरह सारी बातें मुझे साफ साफ दिख गईं।

वह आठ दस दिन नही आई तो मेरा मन हर पल उसी की याद में उलझा रहा। यदि आदत का कठोर अंकुश न होता तो मेरा संयम कबका टूट कर मैं उसके पास जा पहुँचता। भोलानाथ से मेरी व्याकुलता कैसे छिपी रहती? मैं जब सब कुछ सुना चुका तो एक लम्बी हुंकार भरते हुंए वह सोफे पर आराम से टिक गया और बुढऊ अंदाज में कहने लगा -- वाकई आशुतोष, हम सब कई दिनों

से यही बातें कर रहे हैं कि अब तुम दोनों को शादी कर लेनी चाहिये।

लेकिन नही। मेरा मन अब भी घबरा रहा था ऐसे किसी निर्णयसे। मैं एक उजडी इमारत के टूटे हुए शिलाखंड की तरह था। मेरे पिता भरा पूरा संसार छोडकर गिरी कंदराओं में भटकने के लिये निकल गये थे। वही मनमौजी खून मेरी भी रगोंमे दौड रहा था। उस खून की प्रवृत्ति से मैं डरता था जिसने इतनी आसानी से जिम्मेदारी ठुकरा दी थी। उन्हें पत्तियों की अनुगूँज में मंत्रों का घोष सुनाई देता तो मुझे भी तो रंगों के इशारे दिखते। हावडा स्टेशन का वो आसिस्टंट स्टेशन मास्टर गंगाप्रसाद मुखर्जी कभी तो अपने ऑफिस लौट आयगा इस उम्मीद से सुबह शाम वहाँ चक्कर लगाने वाली और फिर हावडा स्टेशन की भीड में खो जाने वाली मेरी माँ। मैं डरता हूँ कि कभी अमिता का हाल भी माँ की तरह न हो जाय।

मेरे और अमिता के बीच के तनाव ने मित्रों को भी घेर लिया था। प्रभुदास, भोलानाथ, नायर आते और हम यूँ ही चुप बैठे रहते। देर तक। फिर वे बिना संभाषण के ही विदा हो जाते। एक दिन भोलानाथ अचानक एक प्रस्ताव ले आया। उसे बुंदेलखंड के लोकसाहित्य पर प्रबंध लिखने के लिये शोधवृत्ति मिली थी। वह झांसी, ओरछा, टिकमगढ और महोबा जाकर यह काम करने वाला था। लेकिन पहले एक क्विक् दौरा जरूरी था। भोलानाथ की आयडिया थी कि हम चारों इस छोटी पिकनिक पर चलें। 'देख,

प्रभुदास और नायर तैयार हैं और यदि तुम्हें मंजूर हो तो अमिता ने भी हाँ कर दी है।' 'अमिता का जाना न जाना मेरे जाने से क्यों जुडा है?' 'यह खुद जाकर उसीसे पूछ ले। यार, तुम तीस वर्ष की उमर बीत जाने पर भी बच्चों की तरह बिहेव कर रहे हो। एक ओर ये रूठना, दूसरी ओर जनम जनम का साथ निभाने की बात करना।'

मैंने चेहरा गंभीर बनाये रखा लेकिन मेरा मन पुलकित हो उठा था। इन आठ दस दिनों में ही मैं जान गया था कि मैं अमिता के बगैर नही जी सकता । वह आई थी एक सुगन्धित झोंके की तरह लेकिन आज तूफानी हवा बनकर मेरे मन को उलीच रही थी। मेरे सपनों पर अब उसका कब्जा था। वह मेरे चित्रों की प्रेरणा थी। या यूँ कहूँ कि पंद्रह वर्ष पहले यहाँ आये इस बंगाली लडके को अपनी छाँव देने वाली मुंबईने फिर एक बार अमिता के रूप में मुझे बाँहों में समा लिया था। अमिता के ही कारण मेरा जलाशय जैसा मन शांत हो गया था और उसकी सतह पर आकाश की नीलिमा बिखर गई थी। उस नीलिमाने मेरी चित्रशैली को बदल दिया। मेरे पहले चित्रों के काले बादलों जैसे तैरते गहरे रंग, कोई खंडित शिल्पप्रतिमा, कही निष्पर्ण पत्तों से झांकती व्याकुलता, सब कहीं उड गये थे। मेरे चित्रों में अब कॅक्टस की बजाय सुगंधी फूल खिलने लगे थे। काली घनी रेषाएँ पानी में घुलकर धुंधली हो जा रही थीं। जब मेरे मन का मधुमास सुआपंखी और गुलाबी रंगो मे प्रगट होने के लिये अकुलाने लगा तो मैने ऋतुवसंत नामक एक चित्रमालिका बना डाली थी। मेरे पहले गूढ चित्रों को शब्दार्थ देकर

कई पन्ने रंगने वाले समीक्षकों की लेखनी इन सीधे सरल चित्रों पर लिखते हुए कन्फ्यूज होकर थम गई। तब मैने और अमिता ने कितना एन्जॉय किया था।

भोलानाथ की बातोसे मैं भीतर तक पारदर्शी हो गया। यह प्रेम ही तो था। मेरे मुरझाये जीवन वृक्ष पर अमिता फिर से नए फूल उगा देगी । रेगिस्तानी बंजर में पडा मेरा चैतन्यबीज इसी अमिता नामक बौछार की प्रतिक्षा में था। अब मुझे चाहिये अमिता का सामिप्य -- सर्वदा के लिये। हमारे बीच दुराव की कल्पना करना ही कितनी मूर्खता थी? मिलनसंधी के इस प्रस्ताव से मैं झूम उठा। दूसरे ही दिन अमिता उसी पुराने हकसे मेरे घर आई। जाने की तैयारी, सामान की पॅकिंग, सारा काम उसीने संभाल लिया। बाकी प्लानिंग सबने पहले ही कर रखी थी। मैं, नायर, उसकी पत्नी जयंती, अमिता, प्रभुदास और भोलानाथ सफर के लिये चल पडे।

मुबंई से पहला पडाव झाँसी। दो तीन घंटो मे ही वह छोटासा शहर हमने उलट पुलट कर देख लिया। तिपहिया सिक्स सीटर टमटंम पर धीमी गति में घूमते हुए स्कूली बच्चों की तरह सारे पोस्टर हम जोर से पढते चल रहे थे। 'कौशल किशोर सहाय, जिलाधिकारी' -- एक तख्ती को जोर से पढकर मैंने भोलानाथ से पूछा - बी एन, कही यह केके तेरे काका तो नही? इस पर सब हँस पडते इससे पहले गंभीर चेहरा बनाकर भोलानाथ बोला, 'हाँ रे हाँ, ये मेरे केके चाचा ही हैं लेकिन धीरे बोलना वरना वे दौडकर

बाहर आ जाएगे।' इस पर हँसी की फौव्वारा छूटा। रात सेंट्रल होटल के उमस भरे कमरे में भोलानाथ की धाराप्रवाह वाणीमें बुदेलखंड का इतिहास सुनते सुंनते जो आँख लगी तो सुबह जल्दी उठो की धूम मच गई। उसी तंद्रा में हमने ओरछा के लिये कूच किया।

ऐसे रूखे प्रदेश में मै पहली बार आ रहा था। कोलकाता और मुंबई दोनो महानगरी में समुद्र का खारापन लिये हवा के नम झोंकों की मुझे आदत सी हो गई थी। वह बुंदेलखंडी शुष्क और तपिश भरी हवा मुझे रास नही आई।

आधे घंटेमें हम ओरछा पहुँच गये। जैसे कोई पुरानी नौका पानी में डूबकर डूबकर समुद्र की तलछट में सदियों तक पडी रहे कुछ ऐसा ही लगा। वर्तमान के किनारे से दूर अपने भूतकाल के जीर्ण वस्त्र ओढे बैठे सकुचाए बूढे की तरह। कुछेक आधुनिक टाइपके घर और वहाँ के आदमी उस पुराने वस्त्र पर टँके पैबन्द की तरह लग रहे थे।

कहने को तो यह पर्यटन क्षेत्र था लेकिन पहली नजर मे लगा कि वहाँ पर्यटकों के लिये कोई आकर्षण नही। एक दुर्ग में बना महल, सामने श्रीराम और श्री चतुर्भुज नारायण के मंदिर। उनके पीछे उजडी हुई बगिया और जहाँ तहाँ बिखरे हुए राजधानी के अवशेष। ओरछा का पहला दर्शन उत्साह बढाने वाला नही था। लेकिन धीरे धीरे हमारी नजरोंको उसकी खूबियॉं दीखने लगीं। पुराने राजमहल का एक हिस्सा अभी भी सजा सँवरा था। वीरसिंहजू देव

ने अपने शरणागत मित्र जहाँगीर के लिये सत्रहवीं सदिमें बनवाया जहाँगीर महल अब एक होटेल बन गया था।

छोटे छोटे कमरों वाले रानी महल के गालियारो मे हलकी ऊष्मा लिये हवा के झोंके अल्लड बालिकाओं की तरह अठखेलियॉं कर रहे थे। भोलानाथ हमें बता रहा था-- ओरछा का राजा था कृष्णभक्त और रानी के आराध्य श्रीराम। रानी अयोध्यासे श्रीराम की मूर्तिको छोटे बच्चे की तरह अपने बाजुओं पर उठाकर यहॉं तक आ गई। प्राणप्रतिष्ठा होने तक उसे जमीन पर नही रखना था। लेकिन थकी हारी रानी ने किसी अनजान क्षणमें अनायास मूर्ति को जमीन पर रख्खा तो वह वहीं पर धँस गई। फिर उसी के चारों ओर मंदिर उठवाया गया। यही था वह मंदिर।

अपने देशके करोडों देवी देवताओंकी अनगिनत दंतकथाओं की तरह यह कथा भी लगी। लेकिन भोलानाथ ने दिखाया-- यह घटना वहाँ के एक शिलालेख पर खुदी हुई थी।

प्रभुदास और नायर अपने अपने कॅमेरेमें धडाधड तस्वीरें उतार रहे थे। अमिता ने शौकिया घागरा चोली पहन रखी थी जे उस परिवेशसे मेल खा रही थी। दसियों बच्चे अपने मैले कुचैले कपडे, रूखे बाल और उत्सुकता भरी आँखें लिये हमारे आस पास मंडरा रहे थे। भोलानाथ की हिदी कॉमेंट्र जयंती को कोई खास समझ नही आ रही थी। वह अपनी खोई खोई आँखो से इधर उधर देख रही थी। हमें घेर कर खडे बच्चों के पीछे से घूँघट काढी महिलाएँ उसके

साँवले कानों में सजे हीरे के कर्णफूलोंकी चमक को आँखों मे समेट रही थीं।

मेरी स्केचबुक भी रेखाचित्रोंसे भरने लगी थी। वहाँ के दो-ढाई सौ भित्ती चित्रों ने मुझपर एक अजीब जादू कर दिया था। बिलकुल अलग एक मर्दाना शैली, जिसकी स्त्रियाँ भी वीररस में आवेशित थीं। मैं उस शैली को अपनी रेखाओं में पकडने मे जुट गया। अमिता को दिखाया-- देख, देख, बुदेलखंडी शैली के ये मूँछोंवाले राम और लक्ष्मण मै पहली बार देख रहा हूँ। सुकुमार राम की जगह ये तनी हुई मूँछोवाले राम? अमिता ने हंसते हुए कहा -- तुम्हें अपनी अराफत स्टाईल दाढी पर अभिमान है, इसीलिये तुम्हारी नजर पहले मूँछोपर ही गई। उस धूसर भूतकाल के आवरण ने मुझे अपना बचपन याद दिलाया-- हाँ, हाँ मैं भी स्कूल मे सुभाष बोस और विवेकानन्द के चित्रोंपर पेन्सिल से मूँछें बनाता था।

तभी भोलानाथ ने मुझे बुलाकर एक दरवाजे की ओर इशारा किया। मैने दूरसे ही देखा-- दरवाजे के दोनों ओर आमने सामने डटे हुए दो हथियों के चित्र थे । हाथियों पर कृष्ण विराजमान थे। भोलानाथ ने पुकार कर कहा-- दूर से नही, जरा पास आकर तो देख। यह कोई सीधा सादा कृष्ण का चित्र नही है। यह है रसराज कृष्ण। मैने नजदीक जाकर कौतुहल से देखा तो वाकई चित्र हाथी का नही था, बल्कि एक दूसरे से लिपटी हुई नौ गोपियों के शरीर

उस हाथी के आकार में समाये हुये थे। उनके शरीर से हाथी के शरीर का आभास हो रहा था।

भोलांनाथ ने बताया-- ये नौ गोपियाँ हैं नौ रस और उनपर आरूढ हुआ है इसी से यह रसराज कृष्ण है। मैंने मन ही मन अपने उस पूर्वज दार्शनिक चित्रकार को प्रणाम किया। भोलानाथ की कॉमेंट्री चालू थी-- यहाँ राजकवि था केशव और राजनर्तकी गणेशकुँवर। वह भी कवयित्री थी। उसका बडा सम्मान था। रानी ने उसे राजघराने की स्त्र्िायोंकी बराबरीमें पालकी का सम्मान दिया था। अन्य राजस्त्र्िायोंकी तरह वह भी सुरंग के रास्ते बेतवा नदी पर नहाने जा सकती थी। राजकवि केशव भी राजा की पंगत मे बैठता था। बहुत ही कलाप्रिय घराना था।

तभी प्रभुदास वहाँ पहुँचा। हमें भूतकालसे वर्तमान मे खींचते हुए उसने प्रस्ताव रख्खा-- आशुतोष, तेरी और अमिता की शादी के लिये इससे अच्छी जगह क्या हो सकती है? यहाँ अयोध्या से पधारे स्वयं रामचंद्र जी हैं।पंडित का काम करने के लिये मैं और भोलनाथ हैं। कन्यादान के लिये नायर और जयंती है। ये सामने इतने बाल बच्चे हैं जो बाराती बन जायेंगे। तू और अमिता अभी इसी पल ब्याह रचा ले। भोलानाथ ने सुर में सुर मिलाया-- हाँ अमिता, मंगल कार्य के लिये हर मुहूर्त शुभ होता है। जयंती ने भी फौरन अमिता का हाथ पकड कर कहा-- मैं कन्यादान के लिये प्रस्तुत हूँ। अमिताने हँसकर मेरी ओर देखा-- आशुतोष, क्या अब भी मुझे माँग भरो सजना कह कर तुम्हारी मिन्नत करनी होगी?

ऐसे अचानक हमले से कोई वीर बुंदेला भी चकरा जाता। मैं भी एक पल को थम सा गया। फिर मन ने कहा ठीक तो है, यहाँ चतुर्भुज नारायण की साक्षी में मैं भी चतुर्भुज हो जाऊँ तो क्या हर्ज है? मैंने हाथ ऊपर उठा दिये-- शरणागत हूँ जो कहोगे मानूँगा। लेकिन शादी से पहले बेतवा नदी के पानी में अपने अपने पाप तो धो लिये जायें।

मेरी बात पर सबको ध्यान आया कि पास मे ही बेतवा नदी कलकल बह रही है। सबको मेरी कल्पना पसंद आई। लेकिन भरी दोपहर नदी स्नान को जाने वाले हम लोगों की बुद्धि पर अगल बगल खडी स्त्रियोंको शक होने लगा। उनमें से एक लडका आगे आकर कहने लगा-- 'बाबूजी हम आपको नहानेकी ठीक जगह दिखात हैं। आपको नही मालूम ये बेतवा बडी डायन है। कहीं नुकीले पत्थर होर कहीं हाथी जित्ता गहरा पानी। फिसलन का तो पता ही नही लगत।' बाकी स्त्रियाँ और बच्चे उसकी हाँ में हाँ मिलाकर शोर गुल करने लगे। अमिता ने मेरे कान के पास आकर कहा-- आशुतोष, मैं तो इन देहातियों के साथ स्नान करने नही जाती। हमलोग कुछ देर और चुपचाप मंदिर देखते हैं और फिर अकेले ही नदी में चलेंगे।

अमिता का इशारा समझ कर भोलानाथ ने कहा-- ठीक है तो बेतवा नहाने के लिये सब लोग शाम को ही चलेंगे। अगले घंटेभर मे उन बच्चों स्त्रियोंके झुंड का कौतुहल समाप्त हो गया। उन्हें लगा हमारे पीछे टाइम गँवाना व्यर्थ है। वे एक एक करके निकलते

गये। फिर हम चुपचाप बेतवा नहाने चल पडे। वहाँ से आगे सुदूर कही बेतवापर बाँध बना कर पानी का रोका गया था। पीछे ठहरे पानी के कारण बेतवा का पात्र सचमुच विशाल हो चला था। हमारी एक ओर यहाँ के दिवगंत राजाओंकी मंदिरनुमा समाधियाँ थीं। सामने दूसरे किनारे पर घनी झाडी। ऊपर स्वच्छ नीलिमा लिये आकाश। इन के प्रतिबिम्ब पानीमें थरथरा रहे थे। पानी में कई जगह मानों कौतूहलसे गर्दन उठाये पत्यर दीख रहे थे।

पहले तो हम घुटनों तक पानी में ही नहाते रहे लेकिन नदी का शांत प्रवाह हमें गहराईमे बुला रहा था। नायर और जयंती केवल हाथ पाँव धोकर ही बाहर निकल आये लेकिन प्रभुदास और भोलानाथ अपनी तैराकी का कौशल दिखाने लगे। मैं अपनी स्केचबुक में रेखाचित्र उतारनेमें लगा हुआ था।हम सबके अनजाने में अमिता न जाने कब पानी में उतर कर दूर तक चली गई थी। उसके पुकारने पर मुझे भान हुआ। उसने अपना घागर पानी के ऊपर फैला रख्खा था। उस गोलाकार गुलाबी घागरेमें दोनों बांहें उठाकर मुझे पुकारने वाली अमिता किसी कमल पुष्प की भॉति खिल रही थी। मैंने झटसे नायर के हाथसे कॅमेरा लिया और उसके पांच छ फोटो खींचे।

तभी भोलनाथ की डपट सुनाई दी-- अमिता आगे मत जाना। वहाँ पानी बहुत गहरा है। उसने खिलखिलाकर कहा-- ओके, ओके, बस एक डुबकी लगाकर आ जाती हूँ। भोलानाथने फिर भयभीत

आवाज में पुकारा-- अमिता। लेकिन अमिता के कमलपुष्पने अपने आप को समेट लिया था। उसने डुबकी
लगाई तो उस शांत पानी के अंदर से मुझे डुबु डुबु शब्द स्पष्ट सुनाई दिया। और फिर अकस्मात छाई एक भीषण नीरवता।

मैं अवाक् किनारेसे ही देख रहा था। अचानक एक कुशंका ने मेरी बुद्धि को जो अंकुश मारा तो मैं तेजी से पानी में कूद पडा। पीछे पीछे भोलानाथ के तैरने के भी आवाज आई। जैसा भोलानाथ ने कहा वहाँ गहरा दह बना हुआ था। साँस रोक कर मैंने नीचे झाँका तो गहरी तलछट में अमिता नजर आई। उसके घने बाल पानी में शैवालकी तरह लहरा रहे थे। खुद अमिता किसी भ्रूण की तरह हाथ पैर सिकोड कर पानी के एक शिलाखंड पर बैठी हुई थी। दोपहर की किरणें मटमैली होकर भी उसके शरीर को उजागर कर रही थीं।

मेरे हाथ उस तक पहुचते इससे पहले ही मेरी अपनी साँस कमजोर पडने लगी तो प्राणोंने एक झटका देकर मेरे शरीर को ऊपर उछाल दिया। मेरी बाँहों ने उसे पकडने की कोशिश की किन्तु व्यर्थ। भोलानाथ भी किसी तरह उसके शरीर को ऊपर खीचना चाह रहा था लेकिन मेरा थरथराता शरीर उसे भी सहयोग नही दे पा रहा था। मैनें एक आखिरी कोशिश के लिये अपने शरीर को पानी के अंदर झोंक दिया। तभी वहाँ अतल में पडा एक नुकीला पत्थर सन्न ने मेरे माथे से टकराया और रक्त की धार बह निकली। वेदना

से तिलमिला कर किसी तरह पानी से ऊपर आया तो प्रभुदास खींचकर मुझे किनारे तक ले गया।

इसी दरमियान जयंती और नायर की चीख पुकार सुनकर मछुआरों के बच्चे भागते हुए आये। तीन चार ने मिलकर किसी तरह अमिता के शरीर को खींचकर गहराई से निकाला। उसका दहिना पैर घुटने से नीचे पूरी तरह फट गया था। अदंर शिलाखंड में उसका पैर इस बुरी तरह फँसा था कि वह खुद निकल ही नही सकती थी।

कुछ ही क्षण पहले खिला हुआ वह कमलपुष्प अब किसी ने तोड मरोड कर फेंक दिया था। मैं सुन्न था। पर जो भी संवेदना बची खुची थी। वह मुझे सबसे अपना मुँह छिपाने के लिये विवश कर रही थी। बाकी सभी सुन्न थे। लेकिन भोलानाथ ने बडा प्रसंगावधान दिखाया। कौशल किशोर सहाय जिलाधिकारी झाँसी का नाम और अपना कार्ड भोलानाथ सहाय आकाशवाणी समाचार वाचक दिखाकर और जाने कितनी मुठ्ठियाँ गर्म कर बात को संभाल लिया। गाँववालोंने भी हमसे सहानुभुति रखते हुए मदत की इसी कारण अगले कई गंभीर प्रश्नोंसे हम बच पाये।

मैंने पूछा अमिता के शरीर का क्या करें। विवश स्वर में नायरने कहा अमिता कुर्ला के किसी होस्टेल में रहती थी। उसपर जबर्दस्ती करने का प्रयास करने वाले किसी रिश्तेदार के चंगुलसे भागकर उसने होस्टल का आसरा लिया था। तुम्हें भी तो उसने

कुछ नही बताया था। अमिता कदम, उम्र तेईस बरस। बस इतना ही। तुम्हें कुछ और जानकारी हो तो कहो।

नही, किसीको कोई जानकारी नही थी। वर्तमान को पूरी जीवन्तता से जीनेवाली अमिता के भूतकालकी बाबत जानने की कोशिश हममें से किसीने नही की थी।

आखिर वहाँ की लोकरीति के अनुरूप हमने अमिता का शरीर फिरसे बेतवा के हवाले कर दिया। प्राचीन काल से जाने कितने शरीरों की खा जाने वाली उस वेत्रवती-- बेतवा नदी को भी मानो उसके शरीर की भूख थी.......

अब भोलानाथ यहाँ नही रहता। वह लखनऊ चला गया है। नायर, प्रभुदास कभी आये तो आये। या फिर मैं ही जाकर उनसे मिल आता हूँ।

उस दिनसे मेरी वाणी भी अजीब गूँगी हो गई है। मैं बोलना चाहूँ तो शब्द आपस में फँस जाते हैं। गले से केवल आकार निकलता है, कभी सस्वर तो कभी स्वरहीन। इसीसे मैंने बोलना छोड दिया है। और फिर मैं बोलकर भी क्या करूँ। मैं जब कहता हूँ कि अमिता यहाँ आती है तो कोई मेरी बात नही मानता।

ओरछा में पत्थर से बना घाव बाद में काफी फैल गया था। ऑपरेशन करना पडा था। फिर तीन चार महीने अस्पताल। लोग यही मानते हैं कि इन सब बातों का मेरे दिमाग पर असर हुआ है। मैं अब इन्हें समझने लगा हूँ। अस्पताल से घर आया तो भोला प्रभु नायर और जयंती की नजरें बडी अजीब हो गई थी। दया से भरी हुई और अमिता के अस्तित्व को नकारने वाली। फिर मैंने सबको जाने के लिये कह दिया। इसका मुझे कोई पछतावा नही। मैं अपने सारे काम ठीक से कर लेता हूँ और चित्रकारी भी। क्या यही साबित नही करता कि मैं नॉर्मल हूँ।

हाँ, अमिता वापस कैसे आई यह मै नही कह सकता। हो सकता है कि जब हमने उसके शरीर को पानी में बहाया तो वह होश में आई हो। हमे उसे बहा देने की जल्दबाजी नही करनी चाहिये थी। अमिता भी यही कहती है। इसी लिये अब मैने सबसे नाता तोड दिया है।यह चित्र बनाने में लगा रहता हूँ बस। और क्या करूँ? कोई एक कॅसेट लगा देता हूँ और यहाँ आकर बैठ जाता हूँ। कॅसेट से अलग अलग सूर निकल कर बहते रहते हैं। सिलसिलेवार तो आज तक मैने कोई काम किया ही नही। कभी नूरजहाँ की जवाँ है मुहब्बत के बाद अमीरखान साहब का मारवा बजता है। उसके बाद बिथोवेन की सिंफनी। बीच ही मे कभी भोलानाथ का कविता पाठ और शेक्सपीयर। या अमिता का बांगला में शक्ती चट्टोपाध्याय की कविता गाना जो मैंने उसे सिखाया था। आवाजों का एक कोलाज सा मेरे चारों ओर बस जाता है।

हॉस्पिटल से आने के बाद से अब तक मैं उन आवाजों को अनुमान से ही समझता था। लेकिन अब इधर वे आवाजें कुछ स्पष्ट होने लगी हैं। और अचानक मैं देख रहा हूँ कि यह चित्र भी पूरा हो गया है। मैं आश्चर्य और विस्मय से इसे देख रहा हूँ। इसे समझ रहा हूँ। चित्र में पानी है जो खून के धब्बों की तरह जम गया है। उस पार के किनारे की झाडियाँ सहम कर पीछे सरकती हुई आपस में गुँथ गई हैं। पानी से बाहर झाँकते हुए शिलाखण्डों पर टकराकर राज घराने के समाधी मंदिरों के प्रतिबिम्ब चूर चूर होकर टुकडों टुकडों में पानी पर फैल गये हैं। आसमान से प्रकाश की रेखा किसी भाले की तरह पानी को चीरती हुई अंदर तक धँस गई है। इस किनारे पर कुछ मानवी आकृतियों के धब्बे बने हैं और पानी के बीचोंबीच तोड मरोड कर एक गुलाबी गोलाकार रख्खा हुआ हैं। लेकिन पानी का थरथराना चित्र में नही है। या फिर प्रतिबिम्ब के टुकडों का भयसे काँप जाना भी नही हैं। ये बाते चित्र की पकड में नही आती।

चित्र को देखते देखते फिर मेरे कानों में बेतवा के किनारे की नीरवता गूँजने लगी। उसीपर कॅसेट से निकली भोलानाथ की आवाज तरलता से जा बैठी। वह शेक्सपीयर पढ रहा था। हॅम्लेट की पंक्तियाँ सुना रहा था। ऑफेलिया पानी में डूब कर कैसे मरी इसे गर्टयूड के माध्यम से कह रहा था।

There on the pendent boughs
her coronet weeds
chambering to hang an

envious silver broke
When down her weedy trophies
and herself
fell in the weeping brook
Her clothes spread wide
till her garments heavy with
their drink
pulled the poor wretch
from her melodious lay
To muddy death.....

पीछे अमिता की चीख सुनाई देती है। 'बस्स। बंद करो कॅसेट। और नही सुन सकती मैं--।' यह अमिता की आवाज उस कॅसेट से नही निकली इतना ही मैं कह सकता हूँ।